प्रकीर्णक पुस्तकमाला—६३

काशी का मान-मंदिर

(अर्थात् काशी के मान-मंदिर तथा दिल्ली के जंतर-मंतर यंत्रालयों की प्रदर्शिका)

लेखक

क्वीन्स कालेज (काशी) के अवसरप्राप्त वाइस-प्रिंसिपल, काशी-विद्यापीठ और बनारस मैथमेटिकल सोसायटी के अवैतनिक प्रधान मंत्री तथा प्रयाग-विश्वविद्यालय के भूतपूर्व फेलो

श्री चंडीप्रसाद, एम० ए०, बी० एस-सी०

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित

प्रथमावृत्ति] संवत् २००० [मूल्य ।=)

परिचय

श्रीयुक्त प्रोफेसर चंडीप्रसाद जी की लिखी हुई मानमंदिर संबंधी यह पुस्तिका हिंदी-पाठकों की सेवा में उपस्थित है। गत २९ चैत्र सं० १९९८ को सभा-भवन में प्रोफेसर महोदय ने प्रसाद-व्याख्यानमाला के अंतर्गत इसी विषय पर एक व्याख्यान दिया था। वह व्याख्यान अनेक दृष्टियों से बहुत उपयोगी था; इसी लिये उसकी मुख्य मुख्य बातें नागरीप्रचारिणी पत्रिका वर्ष ४७ अंक ३-४ में लेख-रूप में प्रकाशित कर दी गई थीं। उसी लेख का पुस्तिका-रूप में यह पुनर्मुद्रण प्रकाशित किया जा रहा है।

मान-मंदिर काशी के मुख्य और दर्शनीय स्थानों में है। यह वेधशाला जयपुर के महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय ने बनवाई थी। उक्त महाराज जयसिंह बहुत बड़े विद्वान् और विद्या-रसिक थे। विशेषतः ज्योतिषशास्त्र तथा तत्संबंधी वेधों आदि के प्रति उनकी विशेष रुचि थी। उन्होंने जयपुर, मथुरा और उज्जैन में इसी प्रकार की वेध-शालाएँ बनवाई थीं। पर काशी की इस वेधशाला में कई विशेषताएँ थीं, जिनके कारण इस वेधशाला का महत्त्व अपेक्षाकृत अधिक माना जाता है। जयपुर की वेधशाला भी कम महत्त्व की नहीं है और वह अभी तक बहुत अच्छी अवस्था में है। दिल्ली की वेधशाला, जो जंतर-मंतर कहलाती है, है तो बहुत विशाल; परंतु जैसा कि इस पुस्तिका के अंत में की हुई तुलना से विदित होगा, उपयोगिता की दृष्टि से काशी की वेधशाला ही अधिक महत्त्व की है। और उसी वेधशाला का यह विस्तृत विवरण है। ज्यौतिष और विशेषतः वेध से प्रेम रखनेवाले सज्जनों के लिये यह पुस्तिका विशेष उपयोगी होगी, इसमें संदेह नहीं।

काशी की वेधशाला का संक्षिप्त इतिहास तथा उसमें जो अनेक यंत्र हैं, उन सब का विवरण इस पुस्तिका में दिया गया है; और यह बतलाया गया है कि उनका उपयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए। लेखक महोदय ने स्वयं महीनों परिश्रम करके मान-मंदिर के यंत्रों का निरीक्षण और उनसे वेध किया

है और इस पुस्तिका में यह दिखाने की चेष्टा की है कि इन यंत्रों की सहायता से प्राप्त मान कहाँ तक ठीक हो सकते हैं। वेध-क्रिया में प्रयुक्त होनेवाले पारिभाषिक शब्दों का सामान्य परिचय भी उन्होंने दे दिया है जो व्यावहारिक ज्यौतिष शास्त्र के आरंभिक ज्ञान की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। इसकी सहायता से साधारण मनुष्य भी थोड़े से परिश्रम से स्वयं बहुत कुछ वेध का कार्य कर सकेंगे। दिल्ली के जंतर-मंतर के यंत्रों का भी इसमें यथास्थान उल्लेख किया गया है। अधिक महत्त्व के यंत्रों के चित्र भी दे दिए गए हैं। जो यात्री और दर्शक आदि भारत के प्राचीन वेध संबंधी यंत्रों का विशेष ज्ञान प्राप्त करना चाहते हों, वे इससे बहुत कुछ लाभ उठा सकेंगे। इसके अतिरिक्त जो लोग ज्यौतिष शास्त्र की मुख्य मुख्य बातों का अध्ययन आरंभ करना चाहते हों, उनके लिये भी यह पुस्तिका विशेष उपयोगी सिद्ध होगी। आशा है, अधिकारी क्षेत्रों में इस पुस्तिका का उचित आदर होगा।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
१५ वैशाख सं० २००० वि०

रामचंद्र वर्मा
प्रधान मंत्री

दो शब्द

पूर्वीय देशों में ज्योतिष का विकास अत्यंत प्राचीन काल में हुआ। चीन में यह कथा प्रचलित है कि वहाँ के राजा चुंगक्यांग ने दो राजज्योतिषियों—ह्सी और हो—का सिर इसलिये कटवा दिया कि वे मदिरा पान करते थे, अपने काम में सुस्त थे, और एक बार (सन् २१३७ ई० पूर्व में) ग्रहण की तिथि पहले से ठीक-ठीक नहीं बतला पाए। मिस्र देश में भी गणित-ज्योतिष से प्रथम परिचय चार हजार वर्ष के पहले ही हुआ होगा।

भारतवर्ष में ज्योतिष का ज्ञान कब से चला आ रहा है, इसका पता नहीं। वेदों, ब्राह्मणों और उपनिषदों में अधिमास और नक्षत्रों की चर्चा से पता चलता है कि उस अत्यंत प्राचीन समय में भी ज्योतिष का यथेष्ट ज्ञान था। प्राप्य प्राचीन ज्योतिष-पुस्तकों में ज्योतिष-वेदांग ही सब से पुराना है और इस पुस्तक के भीतर लिखी ज्योतिषिक बातों से पता चलता है कि इसका निर्माण आज से लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष पहले हुआ था। इसके पश्चात् ज्योतिष का ज्ञान जैसे जैसे बढ़ता गया तैसे तैसे अधिकाधिक शुद्ध गणना होने लगी, जैसा पंचसिद्धांतिका तथा वर्तमान सूर्य-सिद्धांत आदि ग्रंथों से स्पष्ट है।

परंतु ज्ञानवृद्धि हुई कैसे? निस्संदेह वेधों से—यह देखने से कि सूर्य, चंद्रमा, ग्रह आदि आकाश में कहाँ हैं और गणना तथा वेध से प्राप्त स्थितियों में कितना अंतर है, और सोचने से कि किस प्रकार गणना की जाय कि यह अंतर पड़ने न पाये।

इतिहास से प्रत्यक्ष है कि कोई भी जाति उन्नति-शिखर पर दीर्घकाल तक जम नहीं सकी है। यही बात ज्योतिष में भी हुई। जब हमारा ज्योतिष-ज्ञान इतना अच्छा हो गया कि वेध और गणना का अंतर प्रायः शून्य हो गया तो लोगों ने धीरे धीरे वेध करना छोड़ दिया; गणना से ही काम चल जाया करता था। अवश्य ही शिष्यों में उन आचार्यों के प्रति विशेष श्रद्धा उत्पन्न हुई जो उत्तम गणना का मार्ग बतला गए। कुछ समय में यह श्रद्धा इतनी प्रबल हो गई कि लोगों के हृदय में प्राचीन आचार्यों के बतलाए गणित की छान-बीन करना या उससे आगे बढ़ने की चेष्टा करना पाप-सा जँचने लगा, और तभी से भारतीय ज्योतिष का पतन आरंभ हुआ।

इसके कई सौ वर्ष पश्चात् महाराज सवाई जयसिंह द्वितीय हुए। उनको बाल्य-काल से ही ज्योतिष-अध्ययन से प्रेम था। उन्होंने देखा कि वेधोपलब्ध

और गणित-सिद्ध स्थितियों में इतना अंतर पड़ रहा है कि कोई उपचार करना नितांत आवश्यक है। इसलिये उन्होंने वेधशालाएँ बनवाईं, वेध किया और कराया, तथा नवीन ग्रंथों का निर्माण कराया। परंतु व्यवसायी ज्योतिषियों की परंपरागत प्रथा में वे कोई सुधार न कर सके।

काशी का मानमंदिर तथा जयसिंह के बनवाए अन्य वेध-मंदिर इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि ज्योतिष ने अपनी ओर धनी-मानी व्यक्तियों को भी आकर्षित किया है। आधुनिक संसार की कई बड़ी बड़ी वेधशालाएँ—लिक्, यरकिज आदि—करोड़पतियों के दान के फल हैं। भारतीय लक्षाधीशों को भी इस ओर ध्यान देना चाहिए।

भारतीय ज्योतिष इन दिनों बहुत गिरी हुई दशा में है। ग्रहों की स्थिति में बाईस अंश का अंतर पड़े यह लज्जाजनक है। जनता इसी भ्रष्ट ज्योतिष से निकले शुभ मुहूर्तों को पूजा-पाठ आदि के लिये ग्रहण करे यह हास्यप्रद है। जहाँ आज एक अंश के हजारवें भाग तक वेध हो सकता है वहाँ २२ अंश का अंतर! फिर, तिथियों में चार घंटे का अंतर! यदि और नहीं कुछ तो मानमंदिर के स्थूल यंत्रों से ही वेध करके भारतीय प्रणाली के अवलंबी अपनी गणना शुद्ध कर लें।

श्रीयुत चंडीप्रसाद जी ने सरल और सुस्पष्ट रीति से मानमंदिर के यंत्रों का वर्णन करके हिंदीभाषियों का जो उपकार किया है उसके लिये हम सब उनके ऋणी हैं। मानमंदिर हमारे गौरव की वस्तु है, उसका आदर प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है। उसकी महत्ता को समझना प्रत्येक ज्योतिष-प्रेमी का धर्म है। इस पुस्तिका से प्रत्येक नव छात्र को इस लक्ष्य में सहायता मिलेगी।

प्रयाग
१०-४-१९४३

गोरखप्रसाद

विषय-सूची

जयपुर-नरेश महाराज सवाई जयसिंहजी द्वितीय

(१६८६—१७४३ ई०)

चित्र १

काशी का मानमंदिर

यह प्रसिद्ध भवन बनारस के मणिकर्णिका घाट के दक्षिण ओर दशाश्वमेध घाट के पास है। गंगाजी से मानमंदिर तक पत्थर की सीढ़ियाँ लगी हुई हैं। १७वीं शताब्दी के आरंभ में आमेर के राजा मानसिंह ने यह 'मॉन-मंडल' साधुओं और यात्रियों के ठहरने के लिये बनवाया था। सन् १६१४ ई० में राजा साहब की मृत्यु हो गई। सवा सौ वर्ष बाद उनके वंश के महाराजा सवाई जयसिंह[1] ने इस मकान की छत पर ज्योतिष के कई

---

* नागरीप्रचारिणी सभा की 'प्रसाद व्याख्यानमाला' में २६ चैत्र '६८ को हुए लेखक के व्याख्यान का लेख-रूप।

१—जयसिंह जब १३ वर्ष के बालक थे तभी गद्दी पर बैठे। उन्हें बादशाह औरंगजेब के यहाँ सलाम करने जाना था। वहाँ उनसे जिन प्रश्नों के किए जाने की संभावना थी उनके उत्तर मंत्रियों और उनकी माँ ने बताए। बालक ने कहा कि यदि मुझसे इनमें से कुछ न पूछा जाय तो मैं क्या करूँगा। माँ ने कहा—ईश्वर और गुरु पर विश्वास करके जो मुँह से निकले, कह देना। दर्बार पहुँचने पर औरंगजेब क्रोध से आँखें लाल कर, तुरत तख्त से उतर पड़ा और राजा के दोनों हाथ पकड़कर बोला—तुम्हारे पिता और पितामह ने मुझे बहुत हानि पहुँचाई थी, अब मुझे तुम्हारे साथ क्या करना चाहिए? बालक ने शांति-पूर्वक उत्तर दिया—"जहाँपनाह! भारत में विवाह के समय जब कोई आदमी एक हाथ पकड़ लेता है तो उसको आजन्म निर्वाह करना पड़ता है, अब तो दिल्ली के छत्रपति ने मेरे दोनों हाथ पकड़ लिए हैं तो अब मुझको किससे भय है और मैं क्या माँगूँ?" इस उत्तर से बादशाह ऐसा प्रसन्न हुआ कि गद्दी पर उसने उन्हें अपने बगल में आसन दिया और कहा कि तुम अपने पिता से बहुत बढ़कर हो इसलिये तुम्हें आज से 'सवाई' का खिताब दिया जाता है।

यंत्र बनवाए। महाराज जयसिंह को इस विद्या से बड़ी रुचि थी। उन्होंने कई विद्वानों को इस काम में लगाया जो वेध किया करते थे। एक हजार अट्ठारह तारों की स्थितियाँ लिखी गई हैं। उन्होंने ज्योतिष के अध्ययन के लिये कई विद्वानों को भारत के बाहर भी भेजा और दूर दूर से जानकारों को बुलवाया था। दो फ्रांसीसी पादरी चंदरनगर से सन् १७३० ई० में जयपुर बुलाए गए थे। दिल्ली में सन् १७१० ई० और जयपुर में सन् १७२६-३४ ई० में वेधशालाएँ बनवाई गईं और ये बनारस, उज्जैन तथा मथुरा में भी बनीं। जयनगर या जयपुर स्वयं जयसिंह ने बसाया था। इस शहर का नकशा बंग-प्रदेश-निवासी विद्याधर नामक व्यक्ति ने बनाया था। बनारस की वेधशाला कदाचित् सन् १७३७ ई० की है। समरथ जगन्नाथ[१] ने, जो राजा साहब के साथ इस विषय का काम करते थे, इस वेधशाला का नकशा बनवाया था और सदाशिव ममकाजीन के निरीक्षण में सर्दार महोन ने, जो जयपुर के एक कुम्हार थे, यह वेधशाला तैयार की।
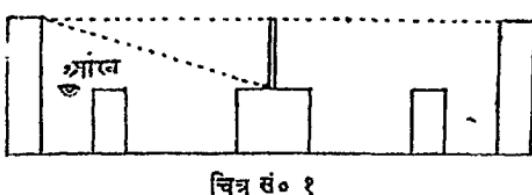
एक बार की घटना है कि बादशाह ने उनकी राजधानी आमेर देखने की इच्छा प्रकट की। इनके महल के लाल पत्थर के खंभे इतने सुंदर थे कि इन्होंने उस पर शीघ्र ही पलस्तर करा दिया कि बादशाह की दृष्टि उस पर न पड़े। इन्होंने अपना तुला-दान एक बार सोने से और दस बार चाँदी से कराया था। अश्वमेध यज्ञ भी किया और हिंदू त्योहारों पर एक पुस्तक 'कल्प-द्रुम' लिखवाई थी।

१—जगन्नाथ मरहठा ब्राह्मण थे। ये अरबी के भी विद्वान् थे। इन्होंने महाराज जयसिंह के लिये कई अरबी पुस्तकों का अनुवाद संस्कृत में किया। यूक्लिड की रेखागणित का और टाल्मी के अल मजेस्ती (=राजश्री-युक्त) का, जिसका नाम सम्राट्-सिद्धांत रक्खा, इन्होंने अनुवाद किया। आज से १८०० वर्ष पहले टाल्मी यूनान का एक प्रसिद्ध ज्योतिषी था। इस पुस्तक का अनुवाद अरबी भाषा में हुआ था। यह प्रसिद्ध पुस्तक एक हजार वर्ष से अधिक समय तक योरप और अरब के प्रदेशों में प्रचलित रही।

दिगंश-यंत्र—सीढ़ियाँ तै करने के बाद छत पर पहुँचने पर सामने पहले दिगंश-यंत्र मिलता है।

दो गोलाकार दीवारें हैं और प्रत्येक के ऊपरी सिरे पर सिरे की पूरी लंबाई भर ० से ३६०° अंश तक के चिह्न पत्थर पर खुदे हुए हैं। एक अंश दस हिस्सों में और ये हिस्से दो-दो टुकड़ों में बँटे हैं। इस प्रकार छोटा हिस्सा ३ मिनट (कला) का हुआ। बाहरी गोलाकार दीवार

चित्र सं० १

२१½ फुट व्यास के घेरे में, ८ फुट ४ इंच ऊँची है। इसी के अंकों पर दिगंश पढ़ा जाता है। भीतरी गोल दीवार २१ फुट के व्यास में है और ४ फुट २ इंच अर्थात् बाहरी दीवार की आधी ऊँची है। इसके पास आँख लगाकर द्रष्टव्य पिंड पर, जो सूर्य्य, चंद्र या तारा हो, दृष्टि लगाते हैं। बाहरी दीवार के ऊपर चारों प्रधान दिशाओं में चार काँटे लंबरूप में जड़े हैं। उनमें एक तार पूर्व से पश्चिम और दूसरा उत्तर से दक्षिण कसकर बँधा था। अब ये टूटकर निकल गए हैं। इस प्रकार दोनों तार एक दूसरे से उन दोनों गोल दीवारों के केंद्र पर मिलते हैं। उसके नीचे एक गोल खंभा ३ फुट ७½ इंच व्यास का और ४ फुट २ इंच ऊँचा है। इस पर भी अंशों के चिह्न बने हैं और इसके बीच में एक जस्तेदार लोहे का २ इंच मोटा गोल पाइप (नल) खंभे की भाँति गड़ा है। इस पाइप का ऊपरी छोर बाहरी बड़ी गोल दीवार के सिरे के धरातल में है। इस प्रकार दोनों बँधे हुए तारों का छेदन विंदु पाइप के ठीक केंद्र पर रहता है। खंभे की जड़ में एक ढीला लोहे का छल्ला लगा हुआ है। इसमें चार छेद हैं। उसमें एक तागा कसकर बाँधा जाता है
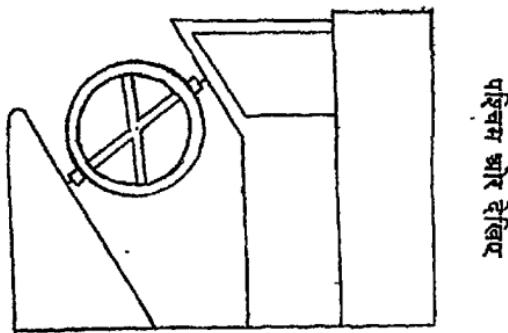
और इस तागे के दूसरे सिरे में एक ढेला बाँधकर बाहरी दीवार के ऊपर से बाहर लटकाया जाता है। इसको खिसका खिसकाकर तब तक परीक्षा की जाती है जब तक आँख से द्रष्टव्य पिंड उस तागे की ओट में इस तरह दिखाई पड़े कि बीच का केंद्र भी उसी तागे की ओट में हो। तब दिगंश पढ़ लिया जाता है। इस प्रयोग में तागा और आँख दोनों को बराबर बराबर हटाना पड़ता है। तागे को दूसरा आदमी हटाता है।

जयपुर के दिगंश-यंत्र में, जिसका वर्णन पं० गोकुलचंद्रजी ने अपनी पुस्तक में लिखा है, उपर्युक्त गोल पाइप नहीं है। केवल एक छोटा सछिद्र शंकु सूत्र बाँधने के लिये है और उसके ऊपर जहाँ दोनों तार एक दूसरे को काटते हैं एक गोल पत्र बँधा है। इस पत्र के बीच में एक छेद है, जिसके भीतर से सूर्य की रोशनी जाकर दूसरी तरफ धरती या भीत पर पड़ती है। यदि तारा या ग्रह देखना हो तो दूसरी तरफ एक आदमी अपनी एक आँख लगाकर उस वस्तु पर छेद के भीतर से देखता रहता है। आँख आवश्यकतानुसार दूसरी भीत से भीतर या बाहर रहती है। चित्र में आँख बाहर है। इस रीति से जो सीधी लकीर दृश्य वस्तु से उस छेद में गिरती है, उसका दूसरी तरफ निकलने का पथ ठीक मिल जाता है। अब वह तागा, जिसमें ढेला बँधा होता है, दूसरा आदमी खिसका खिसकाकर ठीक इस पथ के बीच में लगाता है और धूप में तागे की छाया को दूसरी गोल भीत पर सुगमता से पढ़ लेता है। बाहरी भीत पर भी वही अंक पढ़े जाते हैं। तागा खिसकाकर सूर्य की किरण के पथ को ठीक बीच में लाना एक मनुष्य भी कर सकता है और तागे की परछाहीं धूप में दूसरी भीत के ऊपर स्पष्ट पड़ती है, और पढ़ी जाती है। केवल पाइप के व्यवहार से उतना सूक्ष्म ज्ञान न होगा। छाया-मध्य से पूर्व अथवा पश्चिम बिंदु तक दिगंश है और उत्तर अथवा दक्षिण बिंदु तक दिगंश कोज्यंश है।

दिगंश-यंत्र की बाहरी भीत में पूर्व ओर एक छोटी सी खिड़की है। विषुवद् दिनों में बीचवाली भीत पर आँख लगाकर इस (खिड़की) में से सूर्योदयकालिक दिगंश का ज्ञान किया जा सकता है।

चक्र-यंत्र—दिगंश यंत्र से पश्चिम छोटा सम्राट् यंत्र है जिसके उत्तर में चक्र यंत्र है। यह लोहे का एक भारी गोलाकार छल्ला है। इसका व्यास ३ फुट ७ इंच है, और यह १ इंच मोटा तथा २ इंच चौड़ा है। इसके ऊपर पीतल की ¼ इंच मोटी चद्दर जड़ी है, जिस पर अंश, अर्धांश और चतुर्थांश के चिह्न क्रांति पढ़ने के लिये चारों ओर बने हैं। इस छल्ले के

चक्रयंत्र

चित्र सं० २

एक व्यास के सिरों पर एक एक खूँटी जड़ी है। ये खूँटियाँ उत्तर और दक्षिण दीवार के छेदों में कसकर घूमती हैं। दीवारों के छेद ऐसी स्थिति में हैं कि ये खूँटियाँ ठीक पृथ्वी की धुरी (अक्ष) की सीध में हैं, जिससे कि छल्ला सदैव पृथ्वी की धुरी के समानांतर धुरी के बल घूम सके। निशाना ठीक करने के लिये यंत्र के केंद्र में पीतल की एक खोखली पतली नलिका ऐसी लगी है कि चारों तरफ घूम सकती है। इस नली के भीतर से दृश्य-वस्तु देखकर और उसे ठीक बीचोबीच रखकर क्रांति पढ़ सकते हैं। जब सूर्य्य की रोशनी इसके बीच से निकलती है तो दूसरी ओर कागज पर गोलाकार धूप दीख पड़ती है। तारा देखने के लिये तारे को आँख से ठीक नलिका के बीचोबीच में लाते हैं और क्रांति पढ़ लेते हैं। यह नली छल्ले के बीच में एक पिन द्वारा ढीली जड़ी है। इस पिन के एक सिरे पर घोड़े के

मुँह का चिह्न[१] बना है, जैसा कि मुसलमानी देशों की वेधशालाओं में पाया जाता है। मिस्टर . के कहते हैं कि राजा साहब पर समरकंद के बादशाह उलुग बेग[२] (तैमूर लंग के पौत्र) का यथेष्ट प्रभाव था। उलुग बेग भी राजा जयसिंह की तरह गणित-ज्योतिष के प्रेमी थे। इनका एक पाद-यंत्र लगभग १८० फुट ऊँचा था।

दक्षिण की दीवार पर खूँटी के छेद के चारों तरफ एक वृत्त, माप-रेखा सहित, खुदा है। इससे जान पड़ता है कि घूमनेवाले छल्ले में कभी एक समय बतानेवाला निर्देशक (प्वाइंटर) भी लगा था। इस ओर छल्ले में एक छेद भी है।

नाड़ी-वलय यंत्र—तीसरा यंत्र एक पत्थर का गोला ४ फुट ७ इंच व्यास का है। इसके दोनों पेटे इस तरह लगे हैं कि पृथ्वी के विषुवंत् के समानांतर रहें। यह पत्थर आदमी की कमर की ऊँचाई पर खंभों से जड़ा है। उत्तरीय निरक्ष-तल पर चारों ओर अंशों और घंटा, मिनट के चिह्न खुदे हुए हैं और ठीक केंद्र पर एक लोहे की खूँटी (५ इंच लंबी और पौन इंच मोटी) जड़ी है जिसकी परछाहीं से घंटा, मिनट, जब सूर्य्य उत्तरी अक्षांश में हो, पढ़ सकते हैं। परछाहीं की मध्य रेखा की स्थिति पढ़नी चाहिए। नक्षत्र या तारे जब दक्षिण से उत्तर अक्षांश में आवें तो देखे जा सकते हैं। सायन मेष की संक्रांति से सूर्य्य पत्थर के इस तल से उत्तर और तुला की संक्रांति से दक्षिण हो जाता है। इस पत्थर के दक्षिण तल पर भी एक छोटा
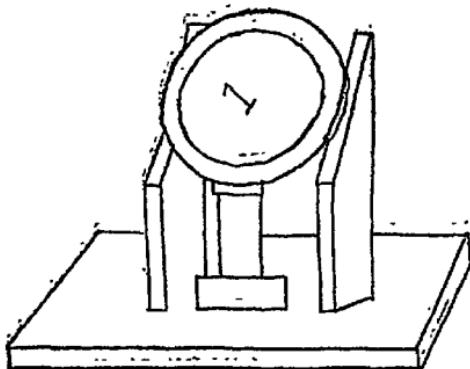
१—ज्योतिष शास्त्र का प्रधान देव सूर्य है। सूर्य का वाहन अश्व है। क्या इसी आधार पर प्राचीन आचार्यों ने अश्वमुखाकृति की कल्पना की है?

२—उलुग बेग ने टालमी के 'अल्मजेस्ती' का अनुवाद किया था। उसकी हत्या सन् १४४९ ई० में हुई। उसने १०१८ तारों की सूची बनाई थी। कहा जाता है कि मुहम्मदशाह ने जयसिंह को इस सूची को शुद्ध वर्तमान रूप में लाने के लिये नियुक्त किया था। जयसिंह ने ७ वर्ष के परिश्रम के बाद सन् १७२८ ई० में 'जिज मुहम्मदशाही' नामक पुस्तक प्रकाशित की।

२ फुट ४ इंच व्यास का वृत्त अंकों सहित खुदा है और बीच में एक खूँटी परछाहीं डालने के लिये लगी है।

इस यंत्र के दक्षिण ओर उसी चबूतरे पर एक चौकोर पत्थर का खंभा ५$\frac{1}{8}$"×५$\frac{1}{8}$" मोटा खड़ा है। खंभे के दक्षिण पृष्ठ में इसके मस्तक पर एक छिद्र है, जिसमें संभवतः खूँटी रही होगी। इस बात का निश्चय करना कि खंभा किस लिये बनाया गया था, कठिन है। क्या इस खूँटी से सेकेंड दोलक लटकाया जाता था? इस खूँटी की ऊँचाई ऐसी है कि दोलक लंबे क्लाक के दोलक की भाँति एक सेकेंड में एक ओर से दूसरी ओर तक पहुँचता।

नाड़ीवलय यंत्र

चित्र सं० ३

इस खंभे के पश्चिम तरफ ऊपरी भाग में एक रेखा भूमि की धुरी के ठीक समानांतर है। नाड़ी-वलय में जो लोहे की खूँटी है यदि वह कभी टूट जाय तो इस रेखा से ठीक की जा सकती है।
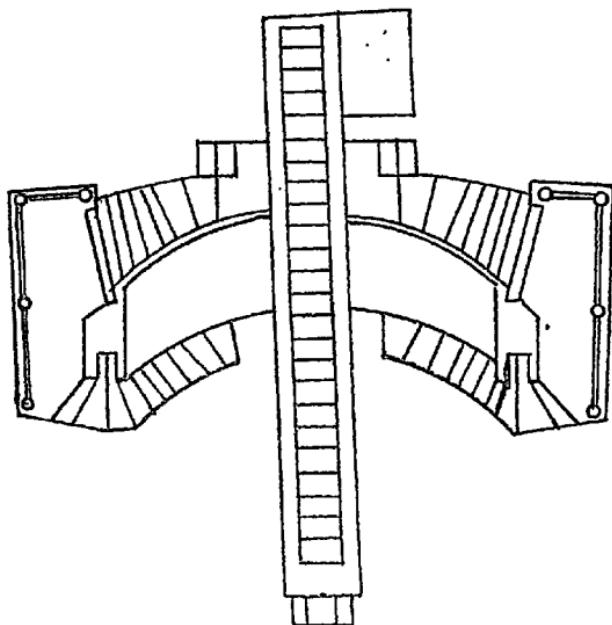
सम्राट्-यंत्र[१]—दो सम्राट् यंत्र हैं। दिगंश-यंत्र के पश्चिम में उसके निकट तो एक छोटा और दूर पर एक बड़ा। बड़े सम्राट् यंत्र में बीच में

१—सम्राट् की अपेक्षा सम-रात शब्द अधिक उपयोगी होता। यह यंत्र विषुव पर निर्भर है। अँगरेजी में Equinox शब्द का अर्थ सम-रात है परंतु

दो ढालू दीवारें ५ फुट ६ इंच के अंतर पर हैं। इनकी चोटी ठीक आकाशीय ध्रुव को सूचित करती है। दोनों दीवारों के बीच में ऊपर चढ़ने के लिये पत्थर

सम्राट् यंत्र

चित्र सं० ४

की सीढ़ियाँ लगी हैं। इन दोनों दीवारों के बाहरी किनारे पृथ्वी की धुरी (अक्ष) के समानांतर हैं और इनकी परछाईं से प्रातःकाल तो पश्चिमी और दोपहर के उपरांत पूर्वी भुजाओं पर—जिन पर घंटे, मिनट, चौथाई मिनट, घड़ी और पल के चिह्न बने हुए हैं—समय पढ़ा जा सकता है। ये दोनों भुजाएँ विषुवद्वृत्त के समानांतर चौथाई गोल, बेलनाकार रूप में हैं और इनके उत्तरी और दक्षिणी किनारों पर एक ही तरह के चिह्न खुदे हुए हैं।

संभवतः अपने वृहत् आकार या अधिक उपयोगिता के कारण जयसिंह ने इसे यंत्रों में सम्राट् की पदवी दी है।

अब हम ढालू दीवारों के ऊपर के चिह्नों को देखें तो इन दोनों भुजाओं के केंद्रों से, जो शंकु के किनारे पर हैं, दो माप के चिह्न ऊपर और नीचे की ओर ढालू दीवार के ऊपरी तल पर बने हैं जिसमें अंश और दशमांश (६ पल) खुदे हैं। जो निशान ऊपर गए हैं वे नीचे के केंद्र से हैं और जो नीचे गए हैं वे ऊपर के केंद्र से हैं। ऊपरवाला चिह्न लगभग ६९° ३५′ है और नीचेवाला ६६° २४′ है। इन चिह्नों से उत्तर दक्षिण क्रांति को ठीक ठीक पढ़ सकते हैं।

सूर्य्य की क्रांति पढ़ने के लिये यदि सीधे किनारेवाला एक पोस्ट कार्ड दीवार के ऊपर चपटा रखा जाय और उसके किनारे की परछाहीं नीचे की भुजाओं पर डाली जाय तो सुगमता होगी। इस परछाहीं का कोना भुजा के पत्थर के ठीक किनारों पर पड़ना चाहिए।

यह ध्यान रखना चाहिए कि सूर्य्य एक चमकदार गोला है जिसकी चौड़ाई आधे अंश से कुछ अधिक है। पूर्व से मध्याह्न वृत्त को पार करने में लगभग २ मिनट का समय लगता है। सूर्य्य की माप सदैव सूर्य्य के केंद्र से की जाती है। इसलिये शंकु के किनारे की परछाहीं, जो भुजाओं पर पड़ती है, पतली नहीं बल्कि मोटी (अस्फुट) सी दिखाई पड़ती है। इसलिये इस परछाहीं का मध्य पढ़ना चाहिए। समय या क्रांति पढ़ने में एक कठिनाई होती है जो अपनी भूल से होती है और निजी भूल कहलाती है। हर एक देखनेवाला अपना अपना मध्य मानता है और उसी को पढ़ता है। क्रांति पढ़ने के लिये यदि कार्ड को एक बार नीचे से ऊपर धीरे धीरे दीवार पर खिसकाएँ और दूसरी बार ऊपर से नीचे को और दोनों बार की क्रियाओं में जब कार्ड की परछाहीं पत्थर के किनारे पर आ जाय, तब पढ़ लें तो हमको दो माप मिलेंगे। इन मापों का मध्यमान (औसत) ठीक ठीक क्रांति बता देगा।

इस रीति से कोई भी मनुष्य अपनी भूल का अंदाजा कर सकता है। दोनों मापों का अंतर, जो हम ऊपर की रीति से मालूम कर सकते हैं, आधे अंश से जितना कम हो, वही हमारी निजी भूल होगी। मेरे देखने में तो साधारणतः दोनों मापों का अंतर $\frac{1}{3}$ अंश आता है, जो कि वस्तुतः आधा अंश होना चाहिए।

यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सूर्य्य की चौड़ाई के कारण मध्याह्न के पहिले का माप लगभग १ मिनट अधिक और मध्याह्न के बाद का माप लगभग १ मिनट कम होता है। पढ़े हुए माप में यह संशोधन करने के बाद एक और संशोधन करना पड़ता है जिसको काल-समीकरण[१] कहते हैं। यह भिन्न भिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न होता है। यह मुख्यतः दो बातों पर निर्भर है, (१) पृथ्वी की कक्षा की उत्केंद्रता, जिसके कारण पृथ्वी की गति जाड़े में अधिक तथा गरमी में कम हो जाती है और (२) रवि की परम क्रांति। इन दोनों संशोधनों को सम्राट् यंत्र के पढ़े हुए समय में जोड़कर हम वह भारतीय प्रामाणिक समय (I. S. T.) मालूम कर सकते हैं जो ग्रीनिच से ५ घंटा ३० मिनट तेज है।
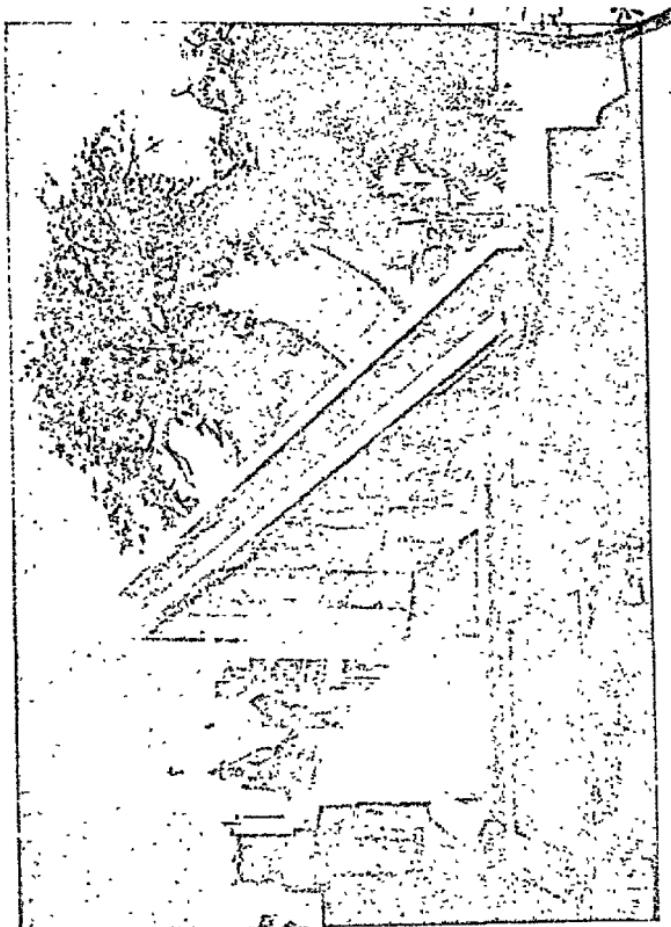
बनारस के लिये काल-संशोधन की निम्नलिखित तालिका है जो आज-कल के लिये उपयुक्त है—

जनवरी १	+ १ मिनट	जुलाई १	+ १ मिनट
जनवरी १५	+ ७ ”	जुलाई १५	+ ४ ”
फरवरी १	+१२ ”	अगस्त १	+ ४ ”
फरवरी १५	+१२ ”	अगस्त १५	+ २ ”
मार्च १	+११ ”	सितंबर १	— २ ”
मार्च १५	+ ७ ”	सितंबर १५	— ७ ”
अप्रैल १	+ २ ”	अक्तूबर १	—१२ ”
अप्रैल १५	— २ ”	अक्तूबर १५	—१६ ”
मई १	— ५ ”	नवंबर १	—१८ ”
मई १५	— ६ ”	नवंबर १५	—१७ ”
जून १	— ५ ”	दिसंबर १	—१३ ”
जून १५	— २ ”	दिसंबर १५	— ७ ”

१—नियमानुसार कालसमीकरण की परिभाषा इस प्रकार है—कालसमीकरण वह संशोधन है जिसे मध्य समय में जोड़ने से स्पष्ट समय निकलता है।

सम्राट यंत्र (बनारस)

चित्र २

तालिका के प्रयोग का उदाहरण धूपघड़ी में, जहाँ पर काली परछाहीं पड़ती है, पढ़ लीजिए। पढ़े हुए समय से यदि आपने दोपहर के पहले पढ़ा है तो एक मिनट घटा दीजिए और यदि दोपहर के बाद पढ़ा है तो एक मिनट जोड़ दीजिए तो बनारस का स्पष्ट काल आ जायगा। अब तालिका से संशोधन निकालकर ऊपर के समय में लगाने से भारतीय प्रामाणिक समय निकल आएगा, जो घड़ी से ज्ञात होता है।

पहली अक्तूबर को काली परछाहीं १० बजकर ४० मिनट बताती है। यह समय दोपहर से पहले का है, इसलिये १ मिनट घटाने से १० बजकर ३९ मिनट हुआ। तालिका देखने से उस दिन का संशोधन—१२ मिनट है। ऋण बारह को १० बजकर ३९ मिनट में जोड़ने से १० बजकर २७ मिनट हुआ। यही घड़ी में समय होगा। पहली और १५ के बीच की तिथियों में अनुपात से संशोधन निकाल लेना चाहिए।

सम्राट् यंत्रों का माप इस प्रकार है—

	दीवारों की ऊँचाई		आधार	कर्ण		धनुषों का अर्धव्यास	धनुषों की चौड़ाई	कोण[1]
	उत्तर	दक्षिण		दीवार की लंबाई	दीवार की चौड़ाई			
ड़ा यंत्र	२२'३·५"	५' ४"	३५'१०"	३९'८·५"	४' ६"	९'१·५"	५'·९"	२५°१४'
छोटा यंत्र	८'३"	३'६"	१०'०·५"	११'१·५"	०'११"	३'·२"	१'९"	२५°१६

छोटे सम्राट् में १ मिनट और एक घड़ी का ३६वाँ भाग पढ़ सकते हैं। क्रांति में १० कला तक के चिह्न हैं। बड़े सम्राट् में ६ कला तक के हैं।

सम्राट् यंत्र से सूर्य्य, चंद्रमा और तारों की भी नति-घटी और क्रांति ठीक ठीक माप सकते हैं। सूर्य्य की नति-घटी पढ़ने का समय

१—आज-कल यह कोण मानमंदिर में २५° १८' २५" है।

ठीक ठीक घड़ी में देख लें और जब रात में दूसरी दृश्य-वस्तु दिखाई पड़े तो उसकी नति-घटी पढ़ लें और समय देख लें। सूर्य्य की गति तो ठीक मालूम है, इसलिये उतने समय में जितनी चाल निकले, उतना समय मिलाने से दृश्य वस्तु के विषुवांश का माप मिल जाता है। क्रांति और विषुवांश दोनों मिल जाने से उनकी स्थिति ठीक हो जाती है। और गणना[१] से उनके विक्षेपांश (खगोलीय अक्षांश) और रेखांश आ जाते हैं। पंचांग में तारों के रेखांश और गति दी हुई रहती हैं। विषुवत् का भी माप ले लेने से हिसाब पूरा हो जाता है और पंचांग की सिद्धि मालूम हो जाती है।
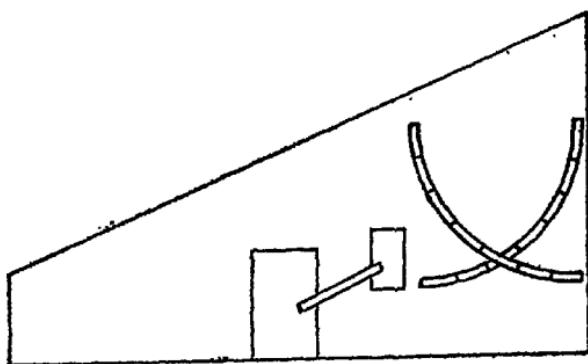
यदि ध्यान से देखा जाय और दोनों यंत्रों में समय पढ़ा जाय तो चारों पढ़ाइयाँ एक ही समय में एक नहीं होतीं वरन् चार होती हैं। एक ही सम्राट् के उत्तर-दक्षिण भुजाओं का समय भी एक नहीं पढ़ा जाता। पंडित बापूदेव कहते हैं कि बड़े सम्राट् की भुजाएँ एक एक इंच लटक गई हैं। परंतु मेरे मतानुसार, शंकु कुछ नीचा बना है और भुजाएँ भी पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण झुकी हैं। मापने पर ज्ञात हुआ कि चारों भुजाओं की त्रिज्याएँ बराबर हैं, उनमें कोई भी बढ़ी हुई नहीं है। कितनी कितनी झुकी हैं, ठीक नहीं बताया जा सकता। घड़ी को अशुद्ध कह देने से किसी यंत्र को छोड़ा नहीं जा सकता। सब घड़ियों या यंत्रों की त्रुटि नापकर संस्कार किया जाता है। व्यवहार का यही नियम सब देशों में है।

दक्षिणोत्तर भित्ति यंत्र—बड़े सम्राट् यंत्र के शंकु की पूर्वी दीवार पर दक्षिणोत्तर भित्ति-यंत्र अथवा दो भित्ति-यंत्र बने हैं। यह दीवार ठीक उत्तर-दक्षिण है। जब सूर्य्य या दृश्य-वस्तु याम्योत्तर पर आती है, इस

१—पुराने समय में ऐसे नक्षत्र-यंत्र धातुओं के बने रहते थे, जिनमें माप के चिह्न भी रहते थे। इससे नति-घटी को लंकोदय में आसानी से, बिना गणना के ही, पढ़ लेते थे। आजकल भी इसी तरह के Slide Rules (विसर्पीगणक) का प्रयोग इंजीनियरिंग विभाग में किया जाता है।

दीवार की सीध में हो जाती है। दोनों तुरीय (पाद) १० फुट ७ इंच की त्रिज्या (अर्द्ध-व्यास) में हैं, और उनके केंद्र पर एक एक लोहे की खूँटी (६·५"×·७५") क्षैतिज गड़ी है जिसकी परछाहीं तुरीय पर पड़ती है। तुरीयों पर अंश और दशमांश के चिह्न खुदे हुए हैं। एक तुरीय दक्षिण के आधे आकाश को दक्षिणीय खूँटी की परछाहीं से पढ़ता है और दूसरा आधे उत्तरी आकाश को।

दक्षिणोत्तर भित्ति यंत्र

चित्र सं० ५

सूर्य्य की रोशनी में खूँटी दीवार के चिह्नों पर गहरी और हलकी छाया और उपछाया डालती है। जब सूर्य्य याम्योत्तर पर हो, इन परछाहियों का ठीक मध्य पढ़ लेना चाहिए। यदि २ या ३ मिनट पहले पढ़ा जाय तो एक कला की भूल हो सकती है। पढ़ने की सुविधा के लिये मैं एक सफेद कागज को मोड़कर ठीक अंश रेखाओं के नीचे दीवार के लंब रूप में रख लेता था और उस पर रेखाओं का चिह्न बना लेता था और परछाहीं की छाया-उपछाया की जगह पेंसिल से चिह्न कुछ मिनट पहले बना लेता था और फिर यथासमय परछाहीं की जगह का ठीक अनुमान कर लेता था। इस रीति से अंशों के दशमांश का अनुमान हो जाता था। बनारस में तो सूर्य्य कभी उत्तर आता ही नहीं, केवल दक्षिणी खूँटी का प्रयोग होता है। साल भर में सबसे बड़े और

सबसे छोटे मध्याह्न-कालिक उन्नतांशों को, जो इससे पढ़े जाते हैं, घटाकर आधा करने से सूर्य्य की महत्तम क्रांति मिलती है। दोनों के ठीक बीच में वसंत विषुव (सायन मेष संक्रांति) और शरद् विषुव (तुला संक्रांति) होती है। महाराज जयसिंह ने इस यंत्र से सूर्य्य की महत्तम क्रांति २३ अंश २८ कला निकाली थी।

तारा देखने के लिये खूँटी में एक तागा या तार आवश्यकतानुसार बाँध सकते हैं। अथवा एक दूसरी खूँटी पहिली खूँटी की मोटाई के बराबर लेकर, रेखा पर लंब रूप में रखकर, उसके और जड़ी हुई खूँटी दोनों के ऊपर तारा देखकर छड़ के केंद्र का स्थान चिह्नों पर ले। यह यंत्र सन् १७७३ ई० की तसवीर में नहीं है। परंतु सन् १८६५ ई० की पुस्तक में इसका वर्णन है। एक दूसरा पुराना दक्षिणोत्तर भित्ति यंत्र भी मानमंदिर वेधशाला के बाहर दक्षिण ओर ७ फुट ९½ इंच त्रिज्या का बना है। मकान के इस भाग को वहाँ के रक्षकों ने घेरकर पृथक् कर दिया है। यह विशेष आज्ञा से देखा जा सकता है। यह वह यंत्र है जिसको पं० बापूदेव शास्त्री ने अपनी सन् १८६५ ई० की प्रकाशित पुस्तक में पहला स्थान दिया है।

इस दीवार की पूर्वी छत पर पहले कुछ अंकित यंत्र थे। अब छत पर कोई यंत्र नहीं है। एक चौकोर या गोलाकार १० फुट ३ इंच व्यास का यंत्र था। इसके दोनों पूर्वी किनारों पर दो लोहे की खूँटियाँ थीं जिनके सिरे पर छेद थे। सन् १८६५ ई० में केवल उत्तरी खूँटी थी। ये यंत्र संभवतः और यंत्रों के बनाने के सहायतार्थ बनाए गए थे। एक और चूने का गोलाकार २ फुट ८ इंच व्यास का और एक पत्थर का गोलाकार ३ फुट ५ इंच व्यास का और एक पत्थर की चिकनी चौकोर चौकी २ फुट २ इंच की उन्हीं यंत्रों के पास उसी छत पर थी। सुना जाता है कि समय समय पर मरम्मत के समय वे यंत्र हटा दिए गए हैं।

सन् १७७३ में सर राबर्ट बार्कर ने जो चित्र प्रस्तुत किया था उसमें दिगंश-यंत्र के दक्षिण में, जहाँ अब एक बड़ा कमरा है, पहले कोई कमरा न था। इस कमरे की छत दिगंश-यंत्र से ऊँची है जिससे यंत्र के दक्षिण ओर आकाश नहीं दिखाई पड़ता।

चक्र छोटा सम्राट् नाड़ी वलय

मानमंदिर (बनारस) के विभिन्न यंत्र
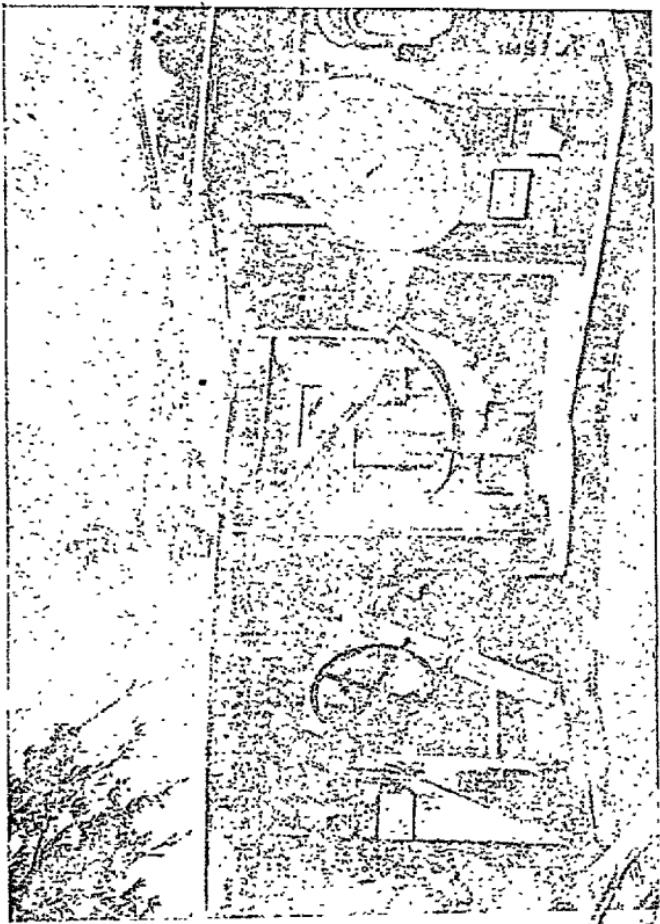
चित्र ३

सन् १८६५ ई० में एक दूसरे नाड़ी-वलय यंत्र के रहने का वर्णन है जो ६ फुट ३ इंच व्यास का था। यह दिगंश यंत्र के दक्षिण में था जहाँ पर अब एक बड़ा कमरा बन गया है। पं० बापूदेव शास्त्री ने अपनी पुस्तक में छोटे सम्राट्-यंत्र के शंकु की चौड़ाई १५ इंच लिखी है परंतु इस समय नापने से ११ इंच होती है। दो स्थानों पर और यंत्र बने हुए थे जो अब पलस्तर टूट जाने से मिटे हुए मालूम पड़ते हैं। छत पर दिगंश-यंत्र के उत्तर-पश्चिम कोने पर एक, और दूसरा फाटक के झंडे के नीचे चौतरे पर है। यंत्रों के समीप चारों ओर जो नालियाँ बनी हैं उनमें पानी भरकर सतह (तल) को बराबर कर लिया था।

ऐतिहासिक वर्णन—सर रावर्ट बार्कर कुछ समय तक बंगाल में प्रधान सेनापति थे। उन्होंने सन् १७७७ ई० में इस वेधशाला का चित्र और वर्णन रायल सोसाइटी लंडन को दिया था। उसमें लेफ्टिनेंट कर्नल कैंबेल ने, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रधान इंजीनियर थे, इसके कई विस्तृत चित्र भेजे थे। वे चित्र सन् १७७२-७३ के हैं। सर बार्कर १७७३ में भारतवर्ष से चले गए थे। महाराज माधवसिंहजी ने सन् १९११ ई० में इन यंत्रों की मरम्मत पं० गोकुलचंद्रजी राज-ज्योतिषी से कराई थी।

इस वेधशाला के बनने के समय के संबंध में मतभेद हैं। प्रिंसेप ने इसका १६८० में बनना बताया है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में १६९३ ई० लिखा है। प्रिंसेप ने लिखा है कि टैवर्नियर ने इसका वर्णन किया है। परंतु टैवर्नियर का देहांत सन् १६८९ ई० में ही हुआ था जब कि जय-सिंह केवल ३ वर्ष के थे। यह भी सुना जाता है कि टैवर्नियर जब बनारस में वेणीमाधव के मंदिर (धरहरा) को देखने आए थे तो महाराज जयसिंह के वंश के दो लड़के उनसे मिले थे। उन्होंने लिखा है कि ये लड़के मिर्जा राजा जयसिंह के पौत्र (?) थे। क्या सवाई जयसिंह ने अपनी बाल्यावस्था में बनारस में पंडितों से शिक्षा प्राप्त की थी? फ्रांसीसी पादरी बोडियर सन् १७३४ ई० में बनारस आए थे और उन्होंने वेध का काम किया था। किंतु उन्होंने मानमंदिर का उल्लेख नहीं किया है। इसलिये के साहब का अनुमान है कि यह वेधशाला सन् १७३७ ई० में बनी होगी। इस

वेधशाला में लगे हुए शिलालेख से ज्ञात होता है कि इसका निर्माणकाल १७१० ई० है।

यह स्पष्ट है कि वेधशाला के निर्माण-काल की यथार्थ शुद्धता के बारे में निरर्थक विवाद होता है। गत शताब्दियों में राजा लोग किसी विशेष मुहूर्त पर यज्ञ अथवा पूजा करने के लिये आकाशीय ग्रह, सूर्य, चंद्रमा तथा नक्षत्रों की स्थिति पर निर्भर रहते थे। इस कारण वे आकाश का वेध किया करते थे जिससे पहले से ही ऐसे मुहूर्त को जान सकें। मुसलमान बादशाह तथा मुगल सम्राट् भी आकाशीय पिंडों का वेध किया करते थे। किंवदंती है कि मुगल सम्राट् हुमायूँ छत पर तारों का वेध कर रहा था, अजान सुनकर वह शीघ्र ही उतरने का प्रयत्न करते हुए सीढ़ी से गिर जाने के कारण मर गया। अकबर और औरंगजेब भी आकाशीय पिंडों के देखने में दिलचस्पी लेते थे। इस कारण यह आश्चर्य की बात नहीं कि वेध करने के लिये उपयुक्त स्थान चुने गए हों और छोटी छोटी वेधशालाएँ केवल राज-गृहों के निकट ही नहीं अपितु तीर्थ तथा पूजा के स्थानों के निकट भी स्थापित रही हों। दशाश्वमेघ और मणिकर्णिका के बीच मान-मंदिर है। उज्जैन और मथुरा भी तीर्थस्थान हैं। उनके रूप में सुधार तथा वृद्धि समय समय पर की गई होगी और यह कार्य्य संभवतः कई वर्षों तक चलता रहा होगा। इस कारण यदि हम किसी खास यंत्र की बनावट से वेध-शाला के बनने की तिथि निश्चित करना चाहते हैं तो भ्रम में पड़ जाते हैं और हमें हर पहलू को मिलाकर एक विशेष तिथि निश्चित करना कठिन हो जाता है। यज्ञस्थानों के निकट वेधशालाओं के रहने से यह भी अनुमान होता है कि प्राचीन समय में भी पंचांगों की अपेक्षा वेध-क्रिया प्रामाणिक मानी जाती थी।

ज्योतिष का संक्षिप्त विवरण

हमारे सिर के ऊपर छतरी के आकार का आकाश मालूम होता है। द्रष्टव्य पिंड की स्थिति कई प्रकार से नापी जा सकती है, जिसमें मुख्य तीन हैं। दूरी नापने का प्रश्न साधारणतः नहीं उठता है। माप

केवल कोण में किए जाते हैं। (१) पहले प्रकार में ऊर्ध्वाधर रेखा और क्षितिज के धरातल से नापते हैं। दिगंश वह कोण है जो कि क्षितिज पर नापा जाता है कि दृश्य-वस्तु किस दिशा में है। उन्नतांश वह कोण है जो बतलाता है कि वस्तु निश्चित समय पर क्षितिज से कितनी ऊँची है। बनारस वेधशाला में इस उन्नतांश के नापने के लिये कोई यंत्र नहीं है। जयपुर और दिल्ली में जय-प्रकाश और राम-यंत्र अब भी हैं। (२) दूसरे प्रकार में पृथ्वी की धुरी (अक्ष) और विषुवत् के धरातल से नापते हैं। वह कोण, जो किसी निश्चित स्थान से पृथ्वी की धुरी के चारों ओर का घुमाव बताए, विषुवांश कहलाता है। निश्चित स्थान मेष-संक्रांति मानते हैं, नत-घटी और लंकोदय इसी पर निर्भर है। और दूसरा कोण, जिसे क्रांति कहते हैं, यह बतलाता है कि विषुवत्-धरातल से दृश्य-वस्तु कितनी उत्तर-दक्षिण है। (३) तीसरे प्रकार में क्रांति-वृत्त का धरातल अर्थात् सूर्य की चाल का मार्ग और इसके लंबवत् कदंब-प्रोत, जो रेखा होगी उन दोनों से नापते हैं। आकाश में उत्तर-दक्षिण फैलाने से यह रेखा जहाँ पहुँचती है उसे 'कदंब' कहते हैं। वह कोण, जो क्रांति-वृत्त पर चारों तरफ नापते हैं, भुजांश कहलाता है और वह कोण जो इस समतल से उत्तर-दक्षिण होता है, खगोलीय-अक्षांश (शर) है। हिंदुओं का माप तीसरे प्रकार का है और विदेशियों का दूसरे प्रकार का। पहले प्रकार का प्रयोग बहुत कम होता है।

यदि हम इन तीनों प्रकार के कोणों में किसी एक प्रकार के दो कोण मालूम कर लें तो गणना से दूसरे प्रकार के दोनों कोण निकाल सकते हैं।

ग्रीनविच-नाटिकल-एलमेनक (नाविक पंचांग) साधारणतः दूसरे प्रकारवाला माप देता है। कोई कोई विदेशी पंचांग तीसरे प्रकार का भी माप देते हैं। वर्तमान काल में पाँच प्रसिद्ध स्थान हैं जो पंचांग और वेध का माप प्रकाशित करते हैं—(१) ग्रीनविच, (२) वाशिंगटन, (३) वर्लिन, (४) पेरिस और (५) सैनफर्निनडो (दक्षिणी अमेरिका)। इस युद्ध के समय में भी उक्त स्थानों के वेध एक दूसरे से मिलाकर प्रकाशित होते हैं।

खगोल को १२ टुकड़ों में ६ बड़े बृहत्-वृत्तों से बाँटा गया है, जैसे एक गोल खरबूजे में १२ फाँकों के चिह्न हों जो दोनों शीर्षों में, जिन्हें कदंब कहा गया है, मिलते हैं। प्रत्येक फाँक एक राशि कहलाती है। मेष-संक्रांति से प्रथम फाँक आरंभ होती है। ग्रह जिस फाँक में हो उसी अंक में कुंडली के घरों में ग्रह को डालते हैं। प्रत्येक राशि में ३० अंश हैं। एक अंश में ६० कलाएँ और एक कला में ६० विकलाएँ होती हैं।

यह देखा जाता है कि सूर्य्य एक सायन वर्ष में फिर उसी नाक्षत्र स्थान पर नहीं लौटता। लगभग एक कला बारह राशियों में बाकी रहती है तभी विषुववृत्त पर पहुँचकर क्रांति-रहित हो जाता है। इसी विलक्षण गति के कारण वास्तविक संक्रांति हर साल कुछ आगे पड़ जाती है। लगभग ७० वर्ष में एक दिन का अंतर होता है। नाक्षत्र वर्ष की गणना को 'निरयण' कहते हैं, दूसरे प्रकार की गणना 'सायन' है। इस सायन-गणना में प्रत्येक वर्ष मेष नए स्थान से आरंभ होता है। इस कारण मेष दो, एक सायन दूसरा निरयण हुआ। निरयण मेष में सूर्य्य आजकल १३ अप्रेल को पड़ता है और सायन मेष में जब दिन-रात बराबर हों, २१ मार्च को। चैत्र कृष्ण ३० संवत् १९९९ वि० को स्थूल रीति से २२°।५७ 'अयनांश' हो गया। लगभग १४०० वर्ष पहले (१८ मार्च ५३२ ई०) सायन और निरयण ग्रहों की स्थिति बराबर थी, अयनांश शून्य था। सूर्यसिद्धांत के मत से अयनांश २७° तक बढ़ेगा, फिर क्रमशः घटेगा और इसी प्रकार दूसरी ओर २७° तक जायगा और घटेगा। पश्चिम के ज्योतिषियों के मतानुसार यह घटता नहीं, एक ही ओर बढ़ता जाता है और लगभग २६००० वर्ष में एक पूरी परिक्रमा कर लेता है। यही बात गणित से भी सिद्ध होती है।

शास्त्रों में नक्षत्रों की परिक्रमा लिखने की विधि भी विदेशी लेखकों से भिन्न है। इसमें परिक्रमा-काल (भगण-काल) नहीं लिखते थे, वरन् एक बड़ा समय (युग) ग्रहों के परिक्रमा-काल का लघुतम को भाँति बनाकर लिखते थे। इस रीति से, इस युगारंभ में सब ग्रह एक स्थान पर थे और उन्होंने भिन्न भिन्न गति से चलना आरंभ किया। कलियुग का आरंभ अब से ५०४३ वर्ष पहले कल्पना किया जाता है। ६०×६०×६०×२० =

=४३२०००० वर्ष एक महायुग है। इस संख्या[१] से पश्चिमीय लोगों को बैबलोनिया के प्रभाव का अनुमान होता है। अबरखस (Hipparchus= हिपारकस), पराशर, आर्यभट्ट तथा पश्चिमीय ज्योतिषियों के अयन चलन से—, जो क्रमशः ४९·"८, ४६"·५, ४६·"२, ५०·"१ हैं—३६०° को भाग देने से ४३२००००/१६६, ४३२००००/१५५, ४३२००००/१५४, ४३२००००/१६७ आता है, जिससे भी ४३२०००० का भान होता है।

पृथ्वी के दैनिक परिभ्रमण के कारण आकाश की सब वस्तुएँ एक दिन में पूर्व से पश्चिम की ओर घूम जाती हैं। और वार्षिक भ्रमण (परिक्रमा) के कारण वे सब एक वर्ष में पश्चिम से पूर्व धीरे धीरे चलती हैं। कभी ग्रह थोड़े दिन उलटे अर्थात् पूर्व से पश्चिम चलते दिखाई पड़ते हैं, तब उनकी गति 'वक्र' कहलाती है।

सूर्य्य और चंद्र की स्थिति को वेधशालाओं के यंत्रों से ठीक ठीक नाप सकते हैं। उनकी राशि, अंश, कला और विकला लिखकर जोड़, घटा सकते हैं। जोड़ने से योग और घटाने से तिथि ठीक ठीक बना सकते हैं। जब चंद्र के केंद्र और सूर्य्य के केंद्र एक राशि, भोगांश या भुजांश में हों, तब अमावस समाप्त होती है, प्रतिपदा आरंभ होती है और जब तक १२° का अंतर न हो जाय, प्रतिपदा रहती है। इसी प्रकार

१—अफलातून की विवाह संख्या प्रसिद्ध है। किसी शिष्य ने अफलातून से प्रश्न किया कि संसार में बुद्धि का उत्तरोत्तर विकास होते रहने से मनुष्य की अवनति क्योंकर होगी। इस पर उत्तर मिला कि कुछ काल व्यतीत होने पर ग्रहों के स्थान में ऐसा हेर-फेर हो जायगा कि ऋतुएँ अदल-बदल जायँगी, उपज बदल जायगी और विवाह ठीक मुहूर्त पर नहीं होंगे। अतः इनसे उत्पन्न हुई सन्तानें माता-पिता को नहीं मानेंगी, उन पर अविश्वास करने लगेंगी और मार-पीट करने पर तक उतारू हो जायँगी। इस प्रकार मनुष्य की बुद्धि अवनत हो जायगी।

प्रत्येक तिथि १२-१२ अंश भोगती है और समाप्त हो जाती है। आधी तिथि जितने समय में बीतती है वह 'करण' कहलाता है।

जैसे घटाने से तिथि निकलती है वैसे ही जोड़ने से योग बन सकता है। अश्विनी नक्षत्र के आदिबिंदु से सूर्य्य और चंद्र केंद्र जितने दूर हों उस दूरी को अंशों में निकालकर जोड़ लें और १३⅓ से भाग दें तो मालूम हो जायगा कि कितने योग बीत चुके और वर्तमान योग कितना व्यतीत हुआ है।

निज अवलोकन—मैं कभी कभी ४ इंची दूरबीन से आकाश को देखा करता था। सन् १९१७ ई० में लगभग ३ मास तक सूर्य्य-लांछन (धब्बा) को प्रातः, मध्याह्न और तीसरे पहर देखकर चित्र खींच लेता था। गत जनवरी मास में शुक्र को पश्चिम आकाश पर देखने लगा। वह प्रतिदिन वृद्ध होकर छिन्न होता गया, यहाँ तक कि नव-चंद्राकार होकर अदृश्य हो गया। पंचांगों में शुक्रास्त कई दिन पहले लिखा था। इसलिये स्थूल माप लेने लगा। गत ३० जनवरी की संध्या को शुक्र का आकार चमकीले रेखावृत्त का ⅛ दिखाई पड़ा था। फिर ३१ जनवरी को न देख सका। ३ फरवरी को प्रातःकाल सूर्य्य के ऊपर पश्चिम-उत्तर ५° पर बाल-शुक्र नवीन चंद्रमा के समान दिखाई पड़ा और इसके बाद प्रतिदिन धीरे-धीरे बढ़ता तथा ऊँचा होता गया। मापों को सौर-पंचांग से मिलाने पर मालूम हुआ कि जब पंचांग में सूर्य और शुक्र का अंतर ३५° अंश लिखा था तो आकाश में १८° अंश ही था।

दिन में तारा देखने पर कुछ लोगों ने आश्चर्य किया था। वह तारा शुक्र ग्रह ही था। जब ग्रह पृथ्वी के निकट आ जाता है और सूर्य्य से प्रकाशित या उज्ज्वलित अधिकतम दिखाई पड़ता है तब उसमें अधिकतम कांति होती है। शुक्र की सबसे अधिक चमक ९ मार्च को थी। इसलिये १०-१५ दिन तक दिन में दिखाई पड़ा था।

उदाहरण—३ तिथियों के निम्नलिखित भोगांश दिए गए हैं। पहले वेध की क्रिया की गई थी। पुनः पत्रा-पंचांगों से उनका मान निकालकर लिखा गया है।

१ली फरवरी १९४२ (१५ माघ शुक्ल अर्द्ध-रात्रि)

	सू०	बु०	शु०	श०
विश्व-पंचांग[1]	९।१९।१६	९।२९।५४	८।२८।५३	०।२२।४८
शास्त्री „ [2]	९।१९।१७	१०।४।१	९।२०।४४	०।२८।४१
उज्जैन „ [3]	९।१९।१९	१०।३।५८	९।२०।५९	०।२८।४५

ग्रहों के स्पष्टीकरण के संबंध में—विशेषतः बुध, शुक्र और शनि के स्पष्टीकरण में संस्कृत सारिणी से बने हुए पंचांग (जैसे विश्व-पंचांग) आदि में अधिक अंतर पड़ता है। वेधोपलब्ध बुध की राशि आदि १०।४।१ है। परंतु विश्व-पंचांग में बुध की राशि आदि ९।२९।५४ लिखी गई है जिस कारण बुध दूसरी राशि में पड़ता है और उसी दिन शुक्र के स्थान में भी २२° अंश का अंतर है। इसलिये पंचांग से बने हुए ग्रहों पर से फलादि के कथन के लिये विशेष गड़बड़ी होगी। शनि का जो मान विश्व-पंचांग में दिया हुआ है उसमें ६ अंश का अंतर है जो कि ६ महीने की शनि की चाल के बराबर होता है। विश्व-पंचांग अदृष्ट ग्रहों के गणनानुसार केवल फल के लिये भले ही बना हो किंतु एक राशि का अंतर बहुत हो जाता है।

२४ फरवरी १९४२ ई०

	बु०	शु०
विश्व-पंचांग	९।१६।५४	९।२।०
शास्त्री „	९।१८।२५	९।१२।२८
उज्जैन „	९।१९।४	९।१२।३०

१—विश्व-पंचांग = श्री काशी-ज्ञानमंडल का सौर पंचांग (सूर्यसिद्धांतानुसार)।

२—शास्त्री पंचांग = पत्रा श्री बापूदेवजी शास्त्री का।

३—उज्जैन पंचांग = प्रकाशक—श्री जीवाजी वेधशाला, उज्जैन (ग्वालियर राज्य)।

इस दिन सायंकाल वेध से बुध और शुक्र का अंतर लगभग ७° प्राप्त हुआ, किंतु विश्व-पंचांग में यह अंतर १५° के लगभग है।

८ मार्च १९४२ ई०

	शनि	मं०	गु०
विश्व-पंचांग	०।२४।४६	१।६।४४	१।२३।२५
उज्जैन ”	०।२९।२५	१।७।३३	१।१९।५०

	विश्व-पंचांग	उज्जैन पंचांग	शास्त्री पंचांग	वेध माप
शनि, मं०	१२°	८°	८°	७°
मं०, गु०	१६	१२°	१२°	१२°

ऊपर की सारिणी से स्पष्ट है कि शनि और मंगल का अंतर विश्व-पंचांग के अनुसार १२° है और उज्जैन के पंचांग के अनुसार ८° है। परंतु वेध से वह अंतर लगभग ७° के बराबर था। इसी प्रकार मंगल और गुरु का अंतर विश्व-पंचांग में १६° है। उज्जैन-पंचांग में १२° है और वेधोपलब्ध में भी १२° है। इससे स्पष्ट है कि मंगल लगभग ठीक है, किंतु शनि और गुरु में विशेष अंतर पड़ जाता है।

मानमंदिर के अनुसार अक्षांश का माप—१० दिन तक

१३	मार्च	२५°।२०′	१७	मार्च	२५°।२१
१४	"	२५°।१८′	१८	"	२५°।१७
१६	"	२५°।१८	१९	"	२५°।१५′

संक्रांति के उपरांत दूसरे मापक से—

२१	मार्च	२५°।२०′	३१	मार्च	२५°।२१′
२२	"	२५°।२२′	७	अप्रेल	२५°।२१′
२३	"	२५°।२०′			

उपर्युक्त माप पढ़े हुए उन्नतांश तथा क्रांति के योग से आए हैं। दोनों में निम्नलिखित संस्कार की आवश्यकता होती है, परंतु योग में ये कट जाते हैं :—

(१) मध्याह्नकालिक उन्नतांश और क्रांति, यंत्रों से देखकर, वायु-मंडलीय वर्त्तनजनित अशुद्धि को शोधने के लिये ३०″ जोड़ा गया है।

(२) पृथ्वी का आकार निम्नाक्ष उपगोल है, क्योंकि पृथ्वी उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों पर धीरे धीरे कुछ चिपटी होती गई है। इसलिये पृष्ठ-स्थान से जो लंब पृथ्वी के बाहर और भीतर बढ़ाया जाता है वह भूकेंद्र से न जाकर कुछ दक्षिण की ओर से जाता है। अतः भूकेंद्र और पृष्ठ-स्थान जोड़नेवाली रेखा तथा लंब के बीच के कोण को, किसी स्थान का अक्षांश जानने के लिये घटाना पड़ता है। बनारस (मानमंदिर) के लिये यह अंतर ८′ ५३″ है।

(३) वेधक्रिया भूकेंद्र पर न करने के कारण जो संस्कार किया जाता है उसको लंबन संस्कार कहते हैं। इसलिये ४″ घटाया गया है।

(४) पृथ्वी की गति के कारण पढ़े हुए मापों में एक अपरेण संस्कार और किया जाता है। यह बहुत सूक्ष्म है।

मानमंदिर के बड़े तथा छोटे सम्राट् यंत्रों के मध्याह्न अर्थात कुछ मिनट पहले और कुछ मिनट पीछे के लिए हुए सूर्यक्रांति के मापों का मध्यमान तथा उज्जैन पंचांग का मान :—

मार्च १९४२	बड़ा यंत्र	छोटा यंत्र	उज्जैन
	अंश कला	अंश कला	अंश कला
८	५ १० द०	५ १६ द०	५ ७ द०
११	४ ० "	४ ५ "	३ ५७ "
१२	३ ३७ "	३ ४० "	३ ३३ "
१३	३ १० "	३ १५ "	३ १० "
१४	२ ४६ "	२ ५० "	२ ४६ "
१५	२ २३ "	२ २८ "	२ २३ "
१६	२ ० "	२ ५ "	२ ० "
१७	१ ३४ "	१ ३८ "	१ ३६ "
१८	१ १४ "	१ १३ "	१ १३ "
१९	० ५४ "	० ५१ "	० ४९ "
२०	० २७ "	...	० २६ "
२१	० १ "	० १० उ०	० ३ उ०
२२	० २३ उ०	० १४ "	० २० "
२३	० ४५ "	० ३८ "	० ४३ "
३०	३ २८ "	...	३ ३० "
३१	३ ५४ "	३ ४७ "	३ ५४ "
७ अप्रेल	६ ३३ "	६ २७ "	६ ३५ "

मानमंदिर वेधशाला के माप—

अक्षांश २५°१८′ २४·९″ उत्तर
देशांतर ८३° ०′ ४६·९″ पूर्व ग्रीनविच } ट्रिगोनोमेट्रिक सर्वे आफ इंडिया १९१५ के अनुसार
समुद्र-तल से ऊँचाई अनुमानतः ३०० फुट।

घाट की एक बुर्जी पर बाढ़ के पानी का तल नापने के चिह्न फुटों में लगे हैं। उसके १४ फुटवाले चिह्न का मध्य २०९·५२७ फुट मध्यमान समुद्र-तल से ऊँचा है।

पार्थिव चुम्बकत्व दिक्पात ०°४०′ पश्चिम (१९४२) प्रतिवर्ष २′ बढ़ता है
,, ,, अवपात ३७°२५′ उत्तर ,, ,, ,, ,, ,,
,, ,, क्षैतिज बल ·३६६१३ ,, ,, ·०००२ ,, ,,
गुरुत्वांक ९७८·९२२ ,,

स्थानीय समय २ मि० ३·१ से० भारतीय (पुराने) प्रामाणिक समय (स्टैंडर्ड टाइम) से पहले (तेज) है।

दिल्ली-वेधशाला

दिल्ली-वेधशाला के संबंध में कुछ बताने से काशी के यंत्रों की उपयोगिता भली भाँति मालूम हो जायगी। वहाँ के 'जंतर-मंतर' में बड़े-बड़े यंत्र चूने के पलस्तर में बने हुए हैं। पलस्तर बिगड़ जाने से चिह्न बहुत कम स्थानों पर पढ़ने योग्य रह गए हैं। इसलिये जो काम मानमंदिर के छोटे पत्थरों के यंत्र पर हो सकता है वह उन बड़े यंत्रों से नहीं हो सकता। वहाँ के मुख्य यंत्र ये हैं :—(१) सम्राट्-यंत्र, (२) जयप्रकाश-यंत्र, (३) राम-यंत्र और (४) मिश्र-यंत्र।
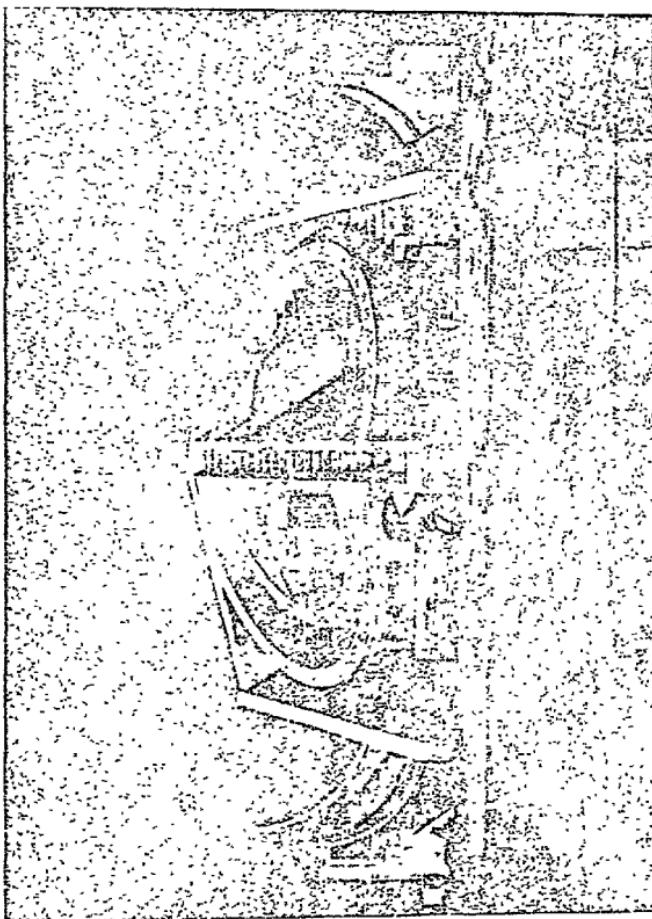
१—सम्राट्-यंत्र पूर्व से पश्चिम १२५ फुट, उत्तर से दक्षिण १२० फुट, पृथ्वी से ऊपर ६० फुट और पृथ्वी में १५ फुट गहराई में है। शंकु १२८½ फुट लंबा है। सम्राट्-यंत्र के पूर्वी खंड में एक षष्ठांश-यंत्र (वृत्त का छठा भाग) है। मध्याह्न-कालिक सूर्य्य की किरण एक ताम्र-पत्र के छोटे छेद में से अंकों पर पढ़ी जाती थी, परंतु अब यह बंद है।

२—जयप्रकाश-यंत्र में दो नतोदरीय अर्द्ध-गोल २७½ फुट व्यास के हैं। एक ही अर्द्ध-गोल यथेष्ट होता, किंतु अर्द्ध-गोलों में के चिह्न पढ़ने के लिये बीच-बीच में कई गलियाँ बनाई गई हैं। दोनों मिलकर पूरे अर्द्ध-गोल का काम करती हैं। अर्द्ध-गोलों के बीच में एक-एक २ इंच मोटे लोहे के खंभे परछाहीं डालने के लिये गड़े हैं। खंभों के बदले पहले दो तार पूरब-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण ऊपर बँधे थे और उनके केंद्र की परछाहीं चिह्नों पर पढ़ी जाती थी। अर्द्ध-गोल में बहुत से पतले चिह्न बने हैं

जिनमें उन्नतांश, दिगंश, रेखांश, अक्षांश, क्रांति और राशियों के चिह्न बने हुए हैं।

३—राम-यंत्र में दो गोलाकार दीवारें २४½ फुट ऊँची बनी हैं। प्रत्येक दीवार अविरत गोल नहीं है परंतु ३०-३० खंडों की है और दोनों गोलाकार एक दूसरे के पूरक हैं। दोनों दीवारों के केंद्र अथवा बीच में एक एक २४½ फुट ऊँचा ५⅛ फुट मोटा खंभा बना है। दीवारों और खंभों के बीच के फर्श पर ३०°-३०° त्रिज्याखंड ३ फुट ऊँचे चौतरे की तरह बने हैं। ये भी २४½ फुट लंबी हैं। चौतरों के नीचे आँख लगाकर खंभे के बगल से दृश्य-वस्तु देख सकते हैं। इससे तथा परछाहीं से भी उन्नतांश और दिगंश, जिनकी रेखाएँ नीचे के चौतरों और दीवारों के किनारों पर बनी हैं, पढ़ सकते हैं। दीवारों की रेखाएँ तो अधिकतर पढ़ने योग्य हैं, परंतु चौतरों की रेखाएँ बिगड़ गई हैं। दीवारों में दोनों तरफ छोटे-छोटे मुक्के छड़ को क्षैतिज रखने के लिये बने हैं और खंभे पर ६-६ अंश चौड़ी ऊर्ध्वाधर धारियाँ बनी हैं।

४—मिश्र-यंत्र मिश्रित है। इसमें कई यंत्रों का संग्रह है। संभवतः यह बाद में बना है। इसके बीच में नियत-चक्र स्थापित है। शंकु की चार दीवारें हैं, ये शंकु सम्राट् यंत्र के शंकु से छोटे हैं। बीच के दो शंकुओं के बाहरी किनारों पर बीच में छेददार एक-एक छोटा पत्थर जमाया हुआ है। छेद में एक छोटा-पतला डंडा खड़ा कर देते हैं जिससे उसकी परछाहीं दोनों बाहरी अर्द्धवृत्तों पर पड़ती है। इस यंत्र में चार अर्द्ध-वृत्त हैं, दो पूर्व और दो पश्चिम। इनके तल दिल्ली-याम्योत्तर से ७७° १६′ पश्चिम, ६८° ३४′ पश्चिम, ६८° १′ पूर्व और ७५° ५४′ पूर्व बने हैं जो कि संभवतः विदेशी चार प्रसिद्ध वेधशालाओं के देशांतरों से मिलते हैं। (१) ग्रीनविच वेधशाला सन् १७७५ ई० की है। इसका देशांतर ७७° १३′ ५″ है। (२) जियूरिच वेधशाला सन् १७५९ ई० में स्विटजरलैंड में बनी जो दिल्ली से ६८° ३९′ ५″ पश्चिम है। (३) जापान के नाटके गाँव की वेधशाला का अक्षांश ४३°३३′ है। यह दिल्ली से ६८°३′ पूर्व है। (४) सेरिच्यू वेधशाला प्रशांत-महासागर के पिक्-द्वीप में रूस से पूर्व है। इसका

अक्षांश ४८° ६′ और दिल्ली से ७५° ५८′ पूर्व है। जब डंडे की छाया सबसे पश्चिमी त्रिज्याखंड पर पड़ती है, तब सेरिच्यू नगर में ठीक दोपहर होता है। और त्रिज्या के अंकित स्केल पढ़ने से सूर्य्य की क्रांति ६ बजकर ५४ मिनट प्रातः दिल्ली स्थानीय काल मालूम होता है। दिल्ली का स्थानीय समय, भारतीय प्रामाणिक समय (भा० प्रा० स०—I. S. T.) से २१ मिनट पीछे है। प्रातः ७ बजकर २८ मिनट स्थानीय काल में दूसरी त्रिज्या पर नाटके का मध्याह्न पढ़ा जाता है। स्थानीय सायंकाल ४ बजकर ३५ मिनट पर जियूरिच का और ५ बजकर ९ मिनट पर ग्रीनविच मध्याह्न-काल पढ़ सकते हैं।

नियत-यंत्र के दोनों तरफ दो बेलनाकार तुरीय स्थानीय समय पढ़ने के लिये ठीक सम्राट् यंत्र के समान बने हैं। पश्चिम की ओर उत्तर में एक तीसरा तुरीय भी है जिसका तल ढलवाँ नहीं प्रत्युत क्षैतिज समतल है। इसके दोनों किनारों पर सूर्य की छाया का भिन्न भिन्न मान आता है जिससे अभांश का ज्ञान होता है।

इस इमारत की पूर्वी दीवार पर दक्षिणोत्तर-भित्तियंत्र है जिसका अर्द्ध-वृत्त आकाश की ओर ऊँचा याम्योत्तर बनाता है। इसके केंद्र के पत्थर में एक छेद है, जहाँ पहले लोहे की खूँटी मध्याह्न-कालिक उन्नतांश पढ़ने के लिये लगी रही होगी।

उत्तर की दीवार ऊर्ध्वाधर से लगभग ५° पीछे की ओर झुकी है और एक वृत्त खंड पर चिह्न साफ साफ अंकित हैं। दिल्ली के सब यंत्रों की अपेक्षा यही चिह्न स्पष्ट हैं, मिटे नहीं हैं। जब सूर्य्य कर्क-राशि पर जून के महीने में सबसे अधिक उत्तर आता है तब इन चिह्नों पर केंद्र की खूँटी की परछाहीं को पढ़ सकते हैं। इसलिये इस यंत्र को कर्क-राशि-वलय कहते हैं।

वेध का महत्त्व

प्राचीन समय में हमारे पूर्वज ग्रहों को प्रायः प्रत्यक्ष देखकर उनके अनुसार ही मुहूर्त को शुद्ध मानते और अपने धर्मकार्य आदि करते थे।

किंतु समय के फेर से आज हमारा ध्यान उस ओर से हट गया है। हमारी वेधशालाएँ भी बेमरम्मत और अपूर्ण पड़ी हैं। समझदार जनता का यह कर्तव्य है कि अपनी वेधशालाओं का सुधार कराए और ग्रहों को प्रत्यक्ष देखकर, पंचांगों को ठीक करके उपयुक्त समय पर अपने धर्मकार्यों के करने की व्यवस्था करे। ग्रहण का समय आदि जानने के लिये जब वेध की अनिवार्य आवश्यकता है तब फिर ग्रहों की गतिविधि जानने और तदनुकूल पंचांग बनाने की आवश्यकता क्यों न हो? यह मत कि तिथि और योग की गणना केवल प्राचीन स्थूल गणित से करना पर्याप्त है, ठीक नहीं है; वेध द्वारा ही उनका निर्णय किया जा सकता है और करना चाहिए।

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, द्वारा प्रकाशित

कुछ नवीन पुस्तकें

(१) मोहें जो दड़ो—लेखक श्री सतीशचंद्र काला, एम० ए० । मोहें जो दड़ो अर्थात् 'मुर्दों का टीला' सिंधु प्रांत में प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ खुदाई में मिली वस्तुओं से भारत के अति प्राचीन इतिहास और संस्कृति का उद्घाटन हुआ है जिसका विस्तार-पूर्वक वर्णन इस पुस्तक में किया गया है। वहाँ की प्राप्त मूर्तियों, ठप्पों तथा अन्य वस्तुओं के चित्रों से सज्जित २०० पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २) ।

(२) नई कहानियाँ—संपादक श्री राय कृष्णदास और श्री पद्मनारायण आचार्य, एम० ए० । यह पुस्तक हिंदी के कहानी साहित्य के नवीनतम विकास की प्रतिनिधि है। इसमें १२ चुनी हुई कहानियाँ संग्रहीत हैं। आरंभ में विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना और अंत में "कहानियों का अनुशीलन" शीर्षक एक लेख है जिससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। पृष्ठसंख्या १८४, मूल्य १।)

(३) संस्कृत-साहित्य का इतिहास (दो भाग)—लेखक श्री सेठ कन्हैयालाल पोद्दार। इसके प्रथम भाग में काव्य-शास्त्र के सुप्रसिद्ध ग्रंथों एवं उनके प्रणेताओं का परिचय तथा काल-निर्णय है। पृष्ठसंख्या २३४, मूल्य १।) द्वितीय भाग में काव्य के प्रयोजन, विषय एवं लक्षण आदि पर विभिन्न आचार्यों के मतों का विश्लेषण और काव्य के पचसिद्धांत का स्पष्टीकरण तथा विवेचन है। पृष्ठ-संख्या २१४, मूल्य १।)

(४) हिंदू-राज्यतंत्र (दूसरा खंड)—अनुवादक श्री रामचंद्र वर्मा। यह पुस्तक सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ स्व० डा० काशीप्रसाद जायसवाल कृत, 'हिंदू पालिटी' का अनुवाद है। इसका प्रथम खंड, जिसमें वैदिक समितियों तथा गणों का वर्णन है, पहले ही प्रकाशित किया जा चुका है। दूसरे खंड में एकराज तथा साम्राज्य शासन-प्रणालियों का वर्णन है। विद्वान् लेखक ने भारतीय शासन-तंत्रों के संबंध में परिश्रम-पूर्वक जो शोध किया है, उससे भारत की गौरव-गरिमा पर नवीन प्रकाश पड़ता है। पृष्ठसंख्या ४२२, मूल्य सादी २), सजिल्द २।)

(५) गुलेरी-ग्रंथ पहला भाग—अमर कृती स्व० श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी की समस्त कृतियों का संग्रह उपर्युक्त नाम से प्रकाशित करने का सभा का विचार है। संपूर्ण ग्रंथ तीन खंडों का होगा। पहले खंड का पहला भाग तैयार है। इसमें उनके ऐतिहासिक लेखों का संग्रह है। पृष्ठ-संख्या लगभग ३००; मूल्य १॥)।